IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

बुन्देली भाषा का संस्कृत सम्बन्ध

डॉ. जया शुक्ला
अतिथि व्याख्याता
संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय
जबलपुर (म.प्र.)

भवभूति रचित उत्तररामचरितम् में ग्रामीणजनों की भाषा का स्वरूप विन्ध्येली प्राचीन बुन्देली ही कही जाती है। फिर भी यह कहना बहुत कठिन है कि बुन्देली कितनी पुरानी बोली है। ठेठ बुन्देली बोली दमोह, सागर, झाँसी आदि में एवं विदिशा, रायसेन, होशंगाबाद आदि में क्षेत्रीय बुन्देलखण्डी बोली जाती है। कहावत भी है 'कोस–कोस में बदले पानी, गांव – गांव में बानी' इस कहावत के आधार पर बुन्देलखण्ड में कई बोली प्रचलित हैं जैसे– डंघाई, चौरासी पावरी, विदीशयीया आदि।

डॉ0 मिशेल के अनुसार ''मध्यप्रदेशीय भाषा का विकास हो रहा था, इसी काल में अर्थात् एक हजार ई0 में बुन्देली पूर्व अपभ्रंश के उदाहरण प्राप्त होते हैं। इसमें देशज शब्दों की बहुलता थी।''

पं0 किशोरीलाल वाजपेयी लिखित हिन्दी 'शब्दानुशासन' के अनुसार– ''हिन्दी स्वतन्त्र भाषा है। उसकी प्रकृति संस्कृत तथा अपभ्रंश से भिन्न है। बुन्देली की माता प्राकृत–शौरसेनी तथा पिता संस्कृत भाषा है। दोनों भाषाओं में जन्मने के उपरान्त भी बुन्देली भाषा की अपनी चाल, अपनी प्रकृति तथा वाक्य विन्यास की अपनी मौलिक शैली है।''

बुन्देलखण्ड की पाटी में सात स्वर एवं पैंतालिस व्यञ्जन हैं। बुन्देली पाटी मौखिक पाठ से आरम्भ हुई। बुन्देली मधुरता व अक्खड़पन जनमानस को आकृष्ट करता है, प्रेरित करता है उसे जानने का, समझने का। मैंने इसी आकर्षण को आधार बनाकर अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिए बुन्देली साहित्य एवं बुन्देली बोली के विषय में पढ़ा, जानकर बेहद आश्चर्य मिश्रित हर्ष हुआ कि वर्तमान समय में बुन्देली बोली पर बहुत काम हो रहा है। बुन्देली का संस्कृत से सम्बन्ध उद्घाटित करने वाला ग्रन्थ 'बुन्देली शब्दों का व्युत्पत्तिकोष' आधुनिक संस्कृत साहित्य के यशस्वी विद्वान आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल जी द्वारा लिखित ग्रन्थ है, जो कि 'महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम्' द्वारा प्रकाश में लाया गया। जिसमें आचार्य शुक्ल जी ने बुन्देली भाषा का मूल संस्कृत धातुओं, ध्वनि परिवर्तन, निर्वचन, सन्धि ऊष्मीकरण, अनुनासिकीकरण, अल्प एवं महाप्राणीकरण आदि पर आधारित कर शब्दों की व्युत्पत्ति बताई है साथ ही ऐसे बुन्देली शब्द जो आज भी शुध्द तत्सम और वेदकालीन स्वरूप में यथावत विद्यमान हैं जबकि उनके समानार्थी हिन्दी के शब्द तद्भव रूप में व्यवहृत हो रहे हैं, इससे बुन्देली भाषा की प्राचीनता एवं भाषा की सत्ता की अपरिसीमता परिलक्षित होती है।

'बुन्देली शब्दों का व्युत्पत्ति कोश' ग्रन्थ में एक शब्द 'अकौआ' बुन्देली शब्द (पु. सं.) जो कि एकार्थी है। इसका हिन्दी अर्थ है आक और इसकी व्युत्पत्ति का आधार संस्कृत का अर्क (पु.) बना है। आचार्य पणिनी के अनुसार अर्क शब्द अर्च धातु से बना– अर्च पूजायाम् (पा. 1/120) अर्चति, इस धातु का अर्थ

पूजा करना, चमकना, सेवा करना, प्रकाशित होना है। अर्क = अर्च + घञ् = अर्क अतः अर्क इस आक – झ – अकौआ।

वहीं यास्क मुनि ने अर्क शब्द की व्युत्पत्ति – ''अर्को देवो भवति। यदेनभरचन्ति। अर्को मंत्रो भवति। यदनेनार्चयन्ति। अर्कमननं भवति। अर्चति भूतानि। अर्को वृक्षो भवति संवृता कटकिम्ना।'' (निरू. 5/4) अर्थात् अर्क देव कहा जाता है क्योंकि यह प्राणियों को जीवित रखता है। अर्क एक वृक्ष को कहते हैं जो कि कटुता लिए हुए होता है।

याज्ञवल्क्य ऋषि ने शतपथ ब्राह्मण में अर्क को अन्न, आदित्य, अग्नि, प्राण, देव और इन्द्र कहा है– अर्को वै देवानां अन्नम् (शत. 12/8,1/2)

– आदित्यो वा अर्कः (शत. 10/6/2/6)

– अग्निर्वा अर्कः (शत. 2/5/1/4)

– प्राणो वा अर्कः (शत. 10/4/1/23)

अर्क की विद्या और सूर्य की विद्या एक ही है। अर्कपुरूष या अग्नि है। जो पुरूष अग्नि या अर्क की उपासना करता है वह यज्ञीय अग्नि का निर्माण कर लेता है ऐसा शतपथ ब्राह्मण में उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु आरूणेय जो कि उद्दालक के पुत्र हैं उनके आख्यान में उद्दालक द्वारा बताया गया–

''तदुवाच स येषोऽग्निः अर्को यत पुरूषः सा यो हेतमेवम् अग्निम् अर्कम् पुरूषम् उपासते अहमग्निः अकोऽस्मि इति विद्यया हेवास्येष श्रोतमन्नः अर्कश्चितः भवति।'' (शत. 10/3/4/5)

अर्क पौधा पाप और मृत्यु का विनाश करने वाला है ऐसा ब्रह्म पुराण में कहा गया है, साथ ही अर्क वृक्षों में सबसे पहले ब्रह्मा ने समस्त प्राणियों के हितार्थ एवं देवताओं की प्रीति बढ़ाने के लिए निर्माण किया था ऐसा भी कहा गया है–

''अर्कस्त्वं ब्रह्मणा स्रष्टः सर्वप्राणीयहिताय च।

वृक्षाणां आदिभूतस्त्वं देवानां प्रीति वर्धनः।।

पापं मृत्यु चाशु विनाशयः।''

वहीं मेघदूत के उत्तर मेघ में आया है कि विदिशा की रमणियों के अलकों की अलंकरण मंदार पुष्पों (अर्क) से होता था। रात्रि में अलकों से गिरे मन्दार पुष्प रास्ते की गोपनीयता भंग कर देते थे–

'गत्युत्कम्पादलकपतितैः मन्दार पुष्पैः।

नशोमार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामनीनाम्।।' (उ.मे.)

विक्रमोर्वषीय नाटक में मन्दार पुष्पों का उल्लेख है–

'मन्दार कुसुम दाम्ना गुरूरस्या सूच्यते ह्रदय कम्पः।' (विक्र./18)

–द्रव्यों के वर्गीकरण में औषधियों का एक उपवर्ग बनाने वाले आयुर्वेद महर्षि सुश्रुत ने अर्कादिगण को उस उपवर्ग में रखा है। इस अर्कादिगण में अर्क पौधा सर्वप्रथम गिना गया है, ऐसा सुश्रुत संहिता में है।

शिव–भक्ति के कारण यह अकौआ बुन्देलखण्ड में अभी भी जीवित है।

2. ऐसे ही बुन्देली शब्द कतरबौ या काटबौ जो कि एकार्थी है। इसका अर्थ काटना, कुतरना होता है। इसकी व्युत्पत्ति – सं. – कृति – छेदने वेष्टने (पा.6/144) – कृन्तति, कतरना, काटना के अर्थ में।

कृत धातु से कृन्तनम् बनता है। करतनम करतरी। करतनम् से दो शब्द बनते हैं कतरबौ एवं काटबौ बुन्देली में तथा हिन्दी में इसका अर्थ कतरना या कटाना होता है। जैसे हम देखते हैं कि – करतनम् – क् + अ + र + त + न + म् –> क् + अ + त + र = कतर –> कतर – बौ केवल र की ध्वनि का स्थानान्तरण हुआ है और अन्तिम वर्ण ध्वनि न् म् लोप हुआ एवं बुन्देली किया सूचक प्रत्यय बौ जुड़ा जिससे कतरबौ बना, वहीं हिन्दी में न किया सूचक लगकर कतरन बना।

– काटबौ शब्द की निष्पत्ति के लिए कृन्तनम् –> क् + अर् + त + न + म् – क् + अ + आ + ट = कटबौ यहाँ अर् का स्थानापन्न आ एवं त के स्थान पर र का समस्थानी ट स्थानापन्न हुआ है इस प्रकार काटबौ – 'बौ' प्रत्यय के साथ बुन्देली किया का रूप बना। यहॉ धातु एक से बने शब्द से दो किया रूप काटबौ–कतरबौ विकसित हुए है। इन दोनों के अर्थ में हिन्दी एवं बुन्देली में थोड़ा सा मूल से अर्थान्तरण हो गया है। कतरना कुतरने के अर्थ में प्रयुक्त होता है वहाँ काटना शब्द उचित नहीं माना जाता। एक बात अवश्य ध्यानाकर्षित करती है कि ऋ स्वर का विकार – अ, आ, इ, ई, उ स्वरों के रूप में व्यक्त होता है क्योंकि इस स्वर में पांचों ध्वनियों के गुण निहित हैं एवं र व्यंजन की ध्वनि भी इसमें समाहित है। यह भारतीय ध्वनिवैज्ञानिकता बुन्देली भाषा के रूपों को वैदिक ध्वनियों के साथ मिलाकर देख सकते हैं। यथा–

वैदिक शब्द घृत का बुन्देली में घी हो गया एवं घृष्ट वैदिक शब्द बुन्देली में घिस है। वहीं वैदिक शब्द कृ का बुन्देली में कर एवं मृतिका का माटी हो गया है। इस तरह अ, आ, इ, ई,ऊ और र में ऋ स्वर का विकार फलित हुआ है, यही व्युत्पत्ति सहयोगी है।

इसी प्रकार कतरबौ से कतरबौ, कतराबौ, कतरवाबौ, कतरन, कतरइया आदि शब्द निष्पन्न हुए।

–एसे ही बुन्देलखण्ड का प्रचलित शब्द उसीसौ है, जिसका अर्थ सिरहाना है, यह परम्परागत तद्भव एवं विकारी शब्द है। इसकी व्युत्पत्ति वैदिक शब्द उष्णीष से तद्भव रूप में विकसित है। उष्णीष वैदिक काल में पगड़ी के रूप में, अत्यन्त उज्जवल शुध्द श्वेत सिर पर बॉधने के वस्त्र के लिए प्रयुक्त होता था। इसका उल्लेख यजुर्वेद 38/3, अथर्ववेद में 15/2/5, तैन्तरीय संहिता में 4/5/3/1 आदि स्थानों पर तथा ब्राम्हण ग्रन्थों में भी इसका प्रयोग (शतपथ– 14/2/1/8) है। उष्णीष् षिर के उपर प्रयुक्त होने वाला वस्त्र वैदिक काल में था वही बाद में षिर का आधार बन गया।

उष्णीष् –> उसीसो में ण् की ध्वनि का लोप हुआ अन्य सभी बुन्देली में रूपान्तरित हो सुरक्षित है।

एक अन्य बुन्देली भाषा का बहुप्रचलित निचौबौ जिसका अर्थ है निचोड़ना, सार निकालना यह परम्परागत तद्भव, यौगिक, विकारी शब्द है। इसकी व्युत्पत्ति को इस तरह से देखते हैं कि सःनि + च्यवन से निच्यवन। च्यवन = च्यु + ल्युट् = च्यवन जिसका अर्थ टपकाऔ, चुआव होता है। चू धातु अकर्मक गिरने, टपकने, चू पड़ने, बह निकलने के अर्थ में आचार्य पाणिनि ने गिनी हैं। इसी से च्यवन संज्ञार्थक शब्द निष्पन्न हुआ है। इसी च्यवन शब्द में नि उपसर्ग जोड़ने से नियंत्रण, दबाने के अर्थ वाला निच्यवन शब्द निष्पन्न होता है। इससे ही बुन्देली शब्द निष्पन्न हुआ है।

निच्यवन – निचवन – निच् अ + उ + न = निचौन उपधा के य का लोप हुआ, व का सम्प्रसारण उकार अ + उ = ओ एवं अन्त्य न का लोप होने पर निचो + बौ = निचोबौ क्रियार्थक संज्ञा शब्द विकसित होता है। दबाव द्वारा रस/जल/सार को बाहर निकालना सूचित कराता है। बुन्देली का निचोर एवं हिन्दी का निचोड़ शब्द अकर्मक क्रियार्थक निचुरबौ तथा संज्ञा स्वरूप सार के अर्थ में निष्पन्न हुए।

इस तरह बुन्देली भाषा में अनेक शब्द ऐसे हैं जो आज भी शुद्ध तत्सम और वेदकालीन स्वरूप में यथावत विद्यमान हैं जबकि उनके समानार्थी हिन्दी के शब्द तद्भव रूप में व्यवहृत हो रहे हैं, इससे बुन्देली भाषा की प्राचीनता प्रतिपादित होती है एवं भाषा की सत्ता अपरिसीम है सिद्ध होता है।